जनसत्ता

बड़ी चुनौती

भारत में आम चुनाव के सात में से चार चरण पूरे हो चुके हैं। हर गठबंधन और दल ज्यादा से ज्यादा सीटें हासिल कर सत्ता में पहुंचने की रणनीति को अंजाम दे रहा है। बालाकोट, भ्रष्टाचार, रोजगार जैसे मुद्दे हावी हैं। जिस तरह से चुनाव प्रचार हो रहा है, वह इस बात का स्पष्ट संकेत है कि मुकाबला किसी भी दल या गठबंधन के लिए आसान नहीं है। दावे चाहे कुछ भी कर लें, लेकिन मतदाताओं के मन को भांप पाना भी आसान नहीं है। तीसरे और चौथे चरण में चुनावी हिंसा की घटनाएं भी इस बात की तस्दीक कर रही हैं कि एक-एक सीट के लिए कड़ा मुकाबला है। चुनावी सभाओं में सत्तारूढ़ राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एनडीए) के दलों और उसका नेतृत्व करने वाले सबसे बड़े दल भारतीय जनता पार्टी की ओर से दावा किया जा रहा है कि वह इस बार और ज्यादा सीटों के साथ सत्ता में आएगी। लेकिन चुनावी तस्वीर बता रही है कि उसके लिए राह आसान नहीं है। भाजपा के लिए अब अगले तीनों, यानी पांचवां, छठा और सातवां चरण ज्यादा चुनौती भरा है। अब तक चार चरणों में दो-तिहाई यानी तीन सौ तिहत्तर सीटों पर वोट पड़ चुके हैं। बाकी तीन चरणों में एक तिहाई सीटों के लिए मतदान होना है। ये वे सीटें हैं जहां भाजपा को इस बार पहले के मुकाबले ज्यादा बड़ी चुनौती मिल रही है।

भाजपा 2014 में पूर्ण बहुमत हासिल करके सत्ता में आई थी। अब जनता के बीच पिछले पांच साल की उपलब्धियों का जिस तरह से प्रचार किया जा रहा है और काम गिनाए जा रहे हैं, उसके बाद भी भाजपा सहित राजग के दलों के भीतर चुनाव चुनौती भरे माने जा रहे हैं। पार्टी के रणनीतिकारों को भी इस बात का अहसास है कि उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में इस बार मुकाबला आसान नहीं है। चौथे चरण में राजस्थान की आधी से ज्यादा यानी तेरह सीटों पर और मध्यप्रदेश की छह सीटों पर वोट पड़े हैं। पिछले लोकसभा चुनाव में राजस्थान और मध्यप्रदेश से भाजपा ने विपक्ष को साफ कर दिया था। लेकिन पिछले साल दिसंबर में इन दोनों ही राज्यों में भाजपा को सत्ता से बाहर होना पड़ा। पांचवें चरण में सात राज्यों की जिन इक्यावन सीटों पर मतदान होना है, उनमें बारह राजस्थान की, सात मध्यप्रदेश की, सात पश्चिम बंगाल की और चौदह उत्तर प्रदेश की खास हैं जो सत्तारूढ़ भाजपा के लिए काफी अहमियत रखती हैं। इन्हीं में अमेठी और रायबरेली की सीटें हैं जहां से कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी और सोनिया गांधी चुनावी मैदान में हैं। अमेठी की सीट भाजपा के लिए प्रतिष्ठा की सीट बन गई है, जहां से केंद्रीय मंत्री स्मृति ईरानी मैदान में हैं।

अब अंतिम तीन चरणों में उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश और पश्चिम बंगाल प्रमुख राज्य हैं जहां भाजपा ने अपनी पूरी ताकत झोंकी हुई है। पश्चिम बंगाल में अभी तेईस सीटों पर वोट पड़ने हैं। इसी तरह उत्तर प्रदेश में पूर्वांचल की सभी सीटों पर चुनाव है। दिल्ली की भी सभी सातों सीटों पर छठे चरण में मतदान होगा। उत्तर प्रदेश में भाजपा के लिए परेशानी का सबसे बड़ा कारण सपा-बसपा गठबंधन बना है। इसके अलावा, उत्तर प्रदेश में प्रियंका गांधी के चुनाव प्रचार ने कांग्रेस कार्यकर्ताओं में जान फूंक दी है। भाजपा इस हकीकत को अच्छी तरह समझ रही है। पश्चिम बंगाल में ज्यादातर सीटों पर मुकाबला तृणमूल कांग्रेस और भाजपा के बीच है। ऐसे में दीदी के गढ़ में भाजपा का ग्राफ कितना बढ़ता है, यह वक्त ही बताएगा।

आतंक का दायरा

हाल में श्रीलंका में हुए आतंकी विस्फोटों के बाद होने वाली कार्रवाई में जांच जिस दिशा में बढ़ रही है, उससे साफ है कि कुछ खास समूहों के कट्टर और अलगाववादी रवैये की अनदेखी का कैसा नुकसान उठाना पड़ सकता है। यों इस तरह के हमलों में कई बातें समान पाए जाने के बाद पहले ही इस बात की आशंका जताई जा रही थी कि आइएस यानी इस्लामिक स्टेट अपनी गतिविधियों का विस्तार कर रहा है। लेकिन मुश्किल यह है कि जब तक कोई बड़ी और त्रासद घटना सामने नहीं आती है, तब तक सरकारों और संबंधित महकमों की नींद नहीं खुलती है। अब श्रीलंका में हुए विस्फोटों की जांच की जद में जो बातें सामने आ रही हैं, उनके तार भारत में मौजूद कुछ संगठनों से भी जुड़ते दिख रहे हैं। इस मसले पर केंद्रित अपनी जांच के सिलसिले में राष्ट्रीय जांच एजेंसी यानी एनआइए ने रविवार को केरल में कासरगोड और पलक्कड में कई जगहों पर छापे मारे, जिसमें तीन लोगों को हिरासत में लिया गया है। वास्तविक तथ्य तो विस्तार से होने वाली जांच और उसके नतीजे के बाद ही सामने आएंगे, लेकिन माना जा रहा है कि हिरासत में लिए गए तीनों लोगों पर जाफरान हाशिम के कथित अनुयायी होने का संदेह है।

गौरतलब है कि 21 अप्रैल को श्रीलंका में ईस्टर के दिन हुए आतंकवादी विस्फोटों के लिए मुख्य संदिग्ध इस्लामिक उपदेशक जाहरान हाशिम को जिम्मेदार माना जा रहा है। उसके खिलाफ अब तक कोई ठोस कामयाबी तो नहीं मिली है, लेकिन आशंका है कि श्रीलंका में हुए हमले में आत्मघाती हमलावर बन कर उसने खुद को भी उड़ा लिया था या फिर वह फरार है। दरअसल, एनआइए को सबसे पहला शक हाशिम के समर्थक माने जाने वाले कुछ लोगों पर तब हुआ जब उनके सोशल मीडिया के वाल की जांच की गई। वहां कई ऑडियो टेप थे, जिनसे यह पता चला कि कुछ युवा हाशिम के विचार और आतंकवाद के रास्ते से अपना धार्मिक मकसद पूरा करने में विश्वास करते हैं। हालांकि इस्लाम के जानकारों ने साफतौर पर कहा है कि हाशिम जिस तरह की बातें करता था, वे इस्लाम की बुनियादी शिक्षा से बिल्कुल अलग थीं। इसमें हैरान होने वाली बात इसलिए भी नहीं है कि वास्तव में कोई भी मजहब आतंकवाद की शिक्षा नहीं देता। लेकिन मजहब के नाम पर समूचे समुदाय को संचालित करने वाले कुछ लोग साधारण लोगों को अपनी बातों और विचार के जाल में जरूर फंसाते हैं।

इस लिहाज से देखें तो एनआइए ने केरल में अपनी जांच में जिन लोगों को हिरासत में लिया है और जिस तरह का सामान बरामद किया है, अगर इन सबके तार वास्तव में श्रीलंका में हुए आतंकी हमले से जुड़ते हैं तो यह भारत के लिए भी चिंता की बात है। यों श्रीलंका में हुए विस्फोटों के बाद यह खबर आई थी कि इसी मामले की जांच के दौरान एनआइए को कुछ ऐसे सबूत मिले थे, जिनके आधार पर भारत ने खुफिया जानकारी के तहत श्रीलंका को किसी आतंकी हमले के संकेत दिए थे। लेकिन ऐसा लगता है कि उन्हें बहुत गंभीरता से नहीं लिया गया। इसका नतीजा क्या हुआ, अब एक बेहद दुखद अध्याय के रूप में दुनिया के सामने है। अब एनआइए की जांच में अगर श्रीलंका में आतंकी विस्फोटों की साजिश का सिरा भारत में काम कर रहे किसी संगठन से जुड़ा पाया जाता है तो इस मसले पर ठोस कदम उठाना होगा। यह ध्यान रखने की जरूरत है कि भारत की ओर से श्रीलंका को आतंकी हमले के खुफिया संकेत की मामूली अनदेखी की कीमत कितनी त्रासद साबित हुई!

कल्पमेधा

दुष्ट बुद्धि व्यक्ति दूसरों के अच्छे गुणों को जानने की वैसी इच्छा नहीं रखते जैसी उनके अवगुणों को जानने की।

-महाभारत

जोखिम का आकलन जरूरी

वीरेंद्र कुमार पैन्यूली

पहाड़ों में जब भी किसी छोटी या बड़ी जलविद्युत परियोजना के प्रभावों का अध्ययन किया जाना हो तो परियोजनाओं के लिए बनी या बनने वाली सड़कों का, पेड़ों का, जल स्रोतों व भूस्खलन क्षेत्रों पर क्या असर पड़ेगा, इसका भी संज्ञान लिया जाना चाहिए, जो कि अक्सर नहीं लिया जाता है। इससे पारिस्थितिकीय संतुलन बिगड़ता है। लगातार भूस्खलन और भूक्षरण के क्षेत्रों के बनने का खतरा तेजी से बढ़ता है।

भारत के हिमालयी राज्यों में मौजूद, प्रस्तावित और निर्माणाधीन पनबिजली परियोजनाओं की भीड़-सी लग गई है। हर पहाड़ी राज्य ऊर्जा प्रदेश बनने की ओर अग्रसर है। समस्या यह है कि बिजली का करंट तारों में ही नहीं, लोगों को भी लग रहा है। संवेदनशील व दुर्गम क्षेत्र होने के कारण वहां ऐसे भारी उद्योग भी नहीं लगे हैं जिन्हें बहुत बिजली की जरूरत हो और लोगों को भारी रोजगार मिल रहा हो। बल्कि होता यह है कि परियोजनाओं की ठेकेदारी में तो जरूर अकूत कमाई हो जाती है, लेकिन परियोजना निर्माण के बाद कुल रोजगार एक तिहाई भी नहीं रह जाता है। स्थानीय लोगों को जो काम मिलता है वह परियोजना निर्माण के दौरान ही मिल पाता है। लेकिन यह स्थायी रोजगार नहीं होता।

कम से कम हिमाचल और उत्तराखंड में तो ऐसी स्थिति बन गई है कि एक परियोजना का क्षेत्र खत्म हुआ नहीं कि दूसरी परियोजना का क्षेत्र शुरू हो जाता है। निस्संदेह इनमें छोटी-बड़ी, कुछ सरकारी तथा कुछ निजी क्षेत्र की परियोजनाएं होती हैं। कुछ परियोजनाएं राज्यों के बीच भौगोलिक कारणों से साझेदारी की भी होती हैं। कुछ के साथ साझेदारी प्राकृतिक संसाधनों की नहीं, वित्तीय होती है। परियोजनाओं का समुदायों द्वारा विरोध भी होता है। उत्तराखंड में तो एक बार यह भी हुआ था कि जुलाई 2010 में तत्कालीन राज्य सरकार ने अपनी छप्पन पनबिजली परियोजनाओं का आबंटन निरस्त कर दिया था। जनता पूरे राज्य में इन योजनाओं के कारण, खेती, पशुपालन, जल-स्रोतों, घरों और मार्गों पर पड़ने वाले कुप्रभावों से पीड़ित होकर इन परियोजनाओं को रुकवाने के लिए लामबंद हुई थी। अब कई परियोजनाओं के लिए दस-पंद्रह किलोमीटर से भी लंबी सुरंगों से नदियों का पानी मोड़ा जा रहा है। इनसे एक तरफ तो कई किलोमीटर नदियों के क्षेत्र सूखे पड़ जाते हैं। जिन गांवों के नीचे से जलविद्युत परियोजनाओं की लंबी-लंबी सुरंगें जाती हैं, उनकी खेती, पशुपालन, जल-स्रोत और आवास सब क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। गांवों का विस्थापन तक करना पड़ता है। इसका उदाहरण चमोली जिले का चांई गांव है। कहने वाले कहते हैं कि उत्तराखंड में ऐसी कोई छोटी-बड़ी नदी नहीं बची है जिस पर जलविद्युत परियोजनाएं न लगी हों।

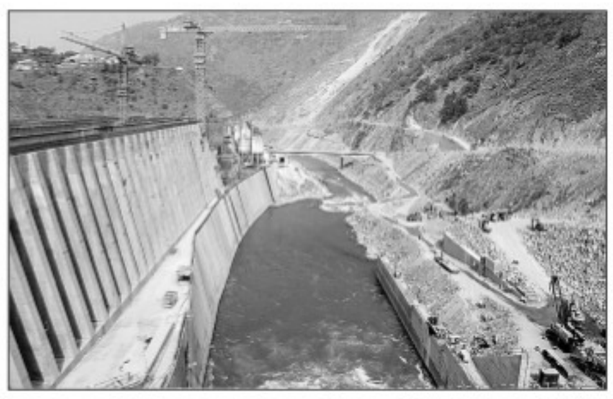

एक बार केंद्र सरकार ने भी उत्तराखंड में निर्माणाधीन व नई प्रस्तावित पनबिजली परियोजनाओं की स्वीकृति तब तक के लिए स्थगित कर दी थी जब तक इनसे पड़ने वाले पर्यावरणीय प्रभावों का विशेषज्ञ आकलन नहीं हो जाता। वैधानिक आवश्यकता तो यह पहले भी थी कि पहाड़ों में किसी भी परियोजना को केंद्र की पर्यावरणीय स्वीकृति के बिना शुरू नहीं किया जा सकता है, खासकर जब इनसे जंगलों का मामला भी जुड़ा हो। परियोजनाओं के प्रभाव आकलन में अब सामूहिकता प्रभाव का संदर्भ भी प्रासंगिक हो गया है। इसके अंतर्गत होना तो यह चाहिए कि ऐसे अध्ययन क्षेत्रीय पारिस्थितिकी प्रभाव आकलन तक ही सीमित न रहें।

सामान्य रूप से परियोजनाओं का सामूहिक प्रभाव आकलन नहीं होता है। वह इकाई या एकल आकलन होता है यानी एक परियोजना का। परंतु जिस प्रकार उत्तराखंड में पांच सौ पचास से ज्यादा छोटी-बड़ी जलविद्युत परियोजनाओं को बनना है, इनके लिए पहाड़ों में सैकड़ों किलोमीटर सुरंगें बननी हैं, उनका लाखों टन मलबा निकलना है, सुरंगों के ऊपर व नीचे बसे गांवों को जर्जर होना है, उनसे जगह-जगह नदियों की मूल धाराओं की दिशाओं को बदलने का क्रम जारी है। पहले के बहते पानी के क्षेत्रों को कहीं-कहीं सूखा भी कर दिया जाता है। स्थानीय मौसम में खासकर नमी के क्षेत्रों में भी बदलाव आते हैं और भविष्य में आएंगे तो ऐसे में एकल प्रभाव आकलन की जगह सामूहिक प्रभाव आकलन ही उचित रहेगा। इससे खेती पर भी असर पड़ा है।

पहाड़ों में जब भी किसी छोटी या बड़ी जलविद्युत परियोजना के प्रभावों का अध्ययन किया जाना हो तो परियोजनाओं के लिए बनी या बनने वाली सड़कों का, पेड़ों का, जल स्रोतों व भूस्खलन क्षेत्रों पर क्या असर पड़ेगा, इसका भी संज्ञान लिया जाना चाहिए, जो कि अक्सर नहीं लिया जाता है। इससे पारिस्थितिकीय संतुलन बिगड़ता है। लगातार भूस्खलन और भूक्षरण के क्षेत्रों के बनने का खतरा तेजी से बढ़ता है। ऐसा भी होता है कि अधिकांश बिजली परियोजनाओं के निर्माण के दौरान जो सड़कें, आवास, डंपिंग जोन आदि बनाए जाते हैं, वे निर्माण के विभिन्न चरणों में बेकार होते जाते हैं। इसके लिए भी कोई अनुबंध भी नहीं किया जाता है कि परियोजना निर्माण पूरा होने के बाद सड़कों की तोड़-फोड़ या भूस्खलन पर उसकी मरम्मत कौन करेगा, उसके लिए पैसा कहां से आएगा, उसका मलबा कौन हटाएगा, व्यक्तियों व संपदाओं को होने वाले नुकसान की क्षतिपूर्ति कौन करेगा।

आमजन का यह भी अनुभव है कि पनबिजली योजनाओं के जाल बिछने के बाद पूरे उत्तराखंड में तराई से लेकर ऊपर पहाड़ों तक जंगली जानवरों को भी कई प्रकार की असुविधाएं हुई हैं। उनके प्राकृतिक गलियारों में अवरोध पैदा हुए हैं। उनके भोजन-पानी के क्षेत्रों व स्रोतों पर प्रतिकूल असर पड़ा है। इसका नतीजा यह हुआ है कि आमजन, उनके खेतों, घरों और मवेशियों पर आक्रमण बढ़े हैं। ऐसे ही व्यवधान पनबिजली परियोजनाओं से, जलाशयों के निर्माण से, जल प्रवाह की दिशा बदलने से, पानी के तापमान में अंतर आने से और कभी पानी छोड़ने या रोकने से जल स्तर में उतार-चढ़ाव से भी जलचरों और मछलियों पर प्रभाव पड़ रहे हैं। परियोजनाओं निर्माण और निर्माण सामग्री के लिए जो खुदाई करनी पड़ती है, उसके प्रभावों का आकलन भी शायद ही किया जाता है। जबकि पहाड़ों में खदानों का यहां तक कि नदियों की तलहटियों तक में रेत-बजरी के लिए भी खुदाई पर कुछ जगहों पर न्यायालयों की रोक लगी है। उत्तराखंड में तो नदियों के खुदान पर भी सुप्रीम कोर्ट की रोक लगी है।

अक्सर आपदाओं के खतरे के कारण उत्तराखंड, हिमाचल या अन्य पर्वतीय क्षेत्र अत्यंत संवेदनशील हैं। ज्यादातर परियोजनाएं ऐसी बनी हैं जिनमें आपदा प्रबंधन को पूरी तरह से नजरअंदाज किया गया है। संकट के समय लोगों को बचाने के लिए ठोस और पर्याप्त इंतजाम नहीं होते। उदाहरण के तौर पर, ज्यादा पानी आने पर बांधों के फाटक अचानक बिना सूचना के खोलने से ही भारी नुकसान की खबरें अब उत्तराखंड व हिमाचल में आम बात हो गई हैं। कुछ साल पहले हिमाचल प्रदेश में हैदराबाद के एक इंजीनियरिंग कॉलेज के चौबीस छात्र-छात्राएं ब्यास नदी में अचानक पानी छोड़ दिए जाने से बह गए थे। यह घटना आज भले आई-गई हो गई हो, लेकिन जिन स्थितियों में एक पनबिजली परियोजना के जलाशय से पानी छोड़े जाने के कारण इतना बड़ा हादसा हुआ, वैसी स्थितियां कई जगह पैदा होती रही हैं। हिमाचल के इस हादसे के कुछ दिन बाद ही झारखंड में भी ऐसे ही बिना चेतावनी के बांध से पानी छोड़े जाने के कारण पांच छात्र पानी में फंस गए थे। उत्तराखंड लगातार कई सालों से ऐसे ही मनमानेपन को झेल रहा है। यहां भी स्थानीय लोगों और उनके मवेशियों का जीवन खतरे में है।

बड़े बांध, जलाशयों वाली परियोजनाओं पर इसलिए भी विवाद रहता है कि इनके कारण स्थानीय स्तर पर भूकंप उत्प्रेरित हो सकते हैं। किंतु आज पर्वतीय क्षेत्रों में भूकम्प से ज्यादा परियोजना वालों के लिए व उनसे आम आदमी के लिए भी भूस्खलन व बादल फटने के खतरे हैं। परियोजनाओं के सामूहिक प्रभाव आकलन में इनसे जुड़ी आपदाओं की प्रकृति में बदलाव की जमीनी हकीकत का आकलन होना चाहिए। इसके अलावा हाई टेंशन लाइनों से खेती, पशु व मानव नुकसान भी आपदा का ही रूप है। आने वाली पीढ़ियों को बिना गहन अध्ययन और वैकल्पिक संसाधनों के जल-जंगल-जमीन को संकट में नहीं डालना चाहिए। ऊर्जा के विभिन्न स्रोतों के विकल्प तो हो सकते हैं, किंतु खोए जल, जंगल और जमीन के विकल्प प्रकृति से ही मिल सकते हैं।

प्रतिभा की कसौटी

अमिता तिवारी

दुनिया मेरे आगे

कुछ समय पहले दसवीं कक्षा की परीक्षाएं समाप्त हुई हैं। रिजल्ट आने के पहले ही माता-पिता अपने बच्चों के बेहतर भविष्य के लिए कोचिंग संस्थानों के चक्कर लगाने लगे। बड़े-बड़े कोचिंग संस्थानों में अपने बच्चों का दाखिला कराने के लिए वे ऋण लेने के लिए भी तैयार हैं। सच यह है कि अनेक बड़े संस्थानों में कोचिंग ले रहे विद्यार्थी अवसाद से ग्रस्त हैं। कई बार तो यह अवसाद उन पर इस कदर हावी हो जाता है कि वे आत्महत्या जैसा कदम उठा लेते हैं। आज भौतिकवादी दृष्टिकोण यह है कि जो व्यक्ति जितना बड़ा पैकेज ले रहा है, वह उतना सफल और मेधावी है। इसके अलावा, आज हर अभिभावक अपने बच्चों को डॉक्टर, इंजीनियर के अतिरिक्त और कुछ बनाना ही नहीं चाहता। वे संस्थान भी मशहूर खोजते हैं। अभिभावकों के जीवन में बच्चों की रुचियों, उनकी आकांक्षाओं और प्रतिभा का कोई महत्त्व नहीं होता।

यह बेवजह नहीं है कि आज कुकुरमुत्तों की तरह कोचिंग संस्थानों की बाढ़-सी आ गई है, जिनका उद्देश्य उच्च शिक्षा देना या विद्यार्थियों की प्रतिभा का विकास करना नहीं, बल्कि अधिक से अधिक पैसा कमाना है। इसी प्रक्रिया में कहीं न कहीं वह बच्चा भी प्रभावित होता है जो इनसे जुड़ा है। होना तो यह चाहिए कि कोचिंग संस्थान जितने बच्चों का दाखिला करते हैं, उन पर अपने दावे के मुताबिक वे बराबर ध्यान दें, उनकी क्षमतानुसार उन्हें शिक्षा दें, उनकी प्रतिभा का विकास करें। पर ऐसा होता नहीं है। वे सभी विद्यार्थियों को एक डंडे से हांकते हैं और सरपट दौड़ाते हुए पाठ्यक्रम पूरा करने की होड़ में यह भूल जाते हैं कि कुछ बच्चे इस राह पर चल भी नहीं सकते तो वे सबके साथ बराबर स्तर पर दौड़ कैसे सकते हैं! ऐसे ही कुछ बच्चों के मन में हीनता बोध पैदा हो जाता है। उन्हें ग्लानि होती है कि उन्होंने अपने माता-पिता का पैसा बर्बाद कर दिया। फिर तनाव जब चरम पर पहुंचता है तब वे आत्महत्या जैसा कदम भी उठा लेते हैं। तनाव के क्षणों में उनकी काउंसलिंग करने वाला उनका अपना कोई नहीं होता जो उन्हें यह समझाए कि सफलता के रास्ते और मौके और भी हैं।

होना यह चाहिए कि जो पाठ स्कूल में पढ़ाया जा रहा है, वही कोचिंग संस्थानों में भी पढ़ाया जाए। इससे विद्यार्थियों का मानसिक दबाव और तनाव कम होगा और उन्हें बात भी अच्छी तरह से समझ आ जाएगी। पढ़ाई के लिए स्कूल से लेकर कोचिंग तक के समय में भी तालमेल जरूरी है, ताकि बच्चों की थकान और उन पर दवाब का खयाल रखा जा सके। एक सीमा के बाद हरेक व्यक्ति को शारीरिक रूप से आराम चाहिए होता है, पर अभिभावक समझते हैं कि हमारे बच्चे बिना खाए-पिए, बगैर आराम किए या सोए लगातार पढ़ते रहेंगे। अभिभावकों को समझना चाहिए कि हरेक बच्चे की शारीरिक और मानसिक क्षमता अलग होती है, मगर वे अपने से अधिक दूसरों के बच्चों को देखते हैं। जबकि उन्हें अपने बच्चों के प्रति उदार होना चाहिए। दूसरे मेधावी बच्चे को देख कर अपने बच्चे को निकम्मा नहीं कहना चाहिए। उन्हें यह ताना नहीं देना चाहिए कि तेरे लिए कई लाख रुपए कोचिंग पर खर्च कर दिए... तू उन्हें डुबो रहा है।

यह जरूरी नहीं है कि जो बच्चा क्लास में दस में से दस अंक नहीं ला रहा, वह कल कुछ नहीं कर पाएगा। अगर हम एक निगाह कुछ सफल लोगों के बचपन पर नजर डालें तो पाएंगे कि अपने जीवन में जो लोग सफलता के शिखर पर पहुंचे हैं, वे बचपन में जीनियस नहीं थे। कई बार हमारी असफलता हमारी सफलता की पहली सीढ़ी होती है। आज आइंस्टीन का नाम बड़े गर्व से लिया जाता है। जबकि आइंस्टीन के आलस, मूर्खता और न सुनने की प्रवृत्ति के कारण उनके शिक्षकों ने उन्हें स्कूल से निकाल दिया था, पर उनकी माता ने उन्हें धिक्कारा नहीं, बल्कि उन्हें यह अहसास दिलाया कि वे जीनियस हैं और वे जीनियस बने। आइंस्टीन अपने जीवन में नकारात्मक परिस्थितियों से हताश निराश नहीं हुए। उन्होंने संघर्ष करना नहीं छोड़ा, आत्मविश्वास नहीं खोया और अपने परिश्रम के आधार पर नोबेल पुरस्कार प्राप्त किया। चाल्स डार्विन, न्यूटन, थॉमस एडीसन आदि सभी सामान्य बालक थे।

कहने का आशय यह कि स्कूल के जीवन में असफल व्यक्ति भी अपने जीवन में सफलता के शिखर पर पहुंच सकता है। यह सच है कि केवल कोचिंग इंस्टीट्यूट के सहारे बच्चे नहीं पढ़ते। बच्चों को माता-पिता के भावनात्मक सहयोग की आवश्यकता होती है। माता-पिता का दायित्व केवल अच्छे स्कूल और कोचिंग संस्थान में दाखिला करा कर ही नहीं पूरा हो जाता। जो बच्चे सफलता प्राप्त करते हैं, उनके पीछे उनके माता-पिता का संघर्ष और उनका साथ होता है। बच्चों को माता-पिता का समय और साथ चाहिए होता है, न कि केवल ट्यूशन और कोचिंग की फीस।

चौपाल

मौन मतदाता

इस चुनाव में और पिछली बार के चुनाव में भी यह सवाल आम रहा है कि विपक्ष का प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार कौन है? जवाब किसी के पास नहीं है। इसलिए नहीं कि यहां अमेरिका की तरह दो पार्टियों का मुकाबला नहीं है। यहां दो गठबंधनों का भी मुकाबला राष्ट्रीय स्तर पर नहीं है; बस महाराष्ट्र, बिहार, तमिलनाडु में है, बाकी राज्यों में कोई संयुक्त विपक्षी गठबंधन है ही नहीं। कर्नाटक में कांग्रेस-जनता दल (एस) गठबंधन है, जिसके सामने भाजपा अकेली है तो उत्तर प्रदेश में भाजपा-अपना दल-निषाद का राजग है, सपा-बसपा-रालोद का महागठबंधन है मगर कांग्रेस अकेली है। वैसे भारतीय लोकतांत्रिक प्रक्रिया में चुनाव से पहले प्रधानमंत्री उम्मीदवार कोई जरूरी होता भी नहीं है, क्योंकि चुनाव सांसदों का होता है। जो पार्टी या गठबंधन जीतता है, उसके चुने हुए जनप्रतिनिधि अपना नेता चुनते हैं। तो यह वैकल्पिक होता है कि चाहे तो कोई चेहरा आगे करके लड़े और चाहे तो न लड़े।

कांग्रेस ने औपचारिक रूप से किसी चेहरे को आगे नहीं किया है, न यूपीए ने किया है, न किसी और विपक्षी पार्टी ने, लेकिन भाजपा और उसके तीन दर्जन घटकों ने तीन-चार साल पहले ही मौजूदा प्रधानमंत्री को 2019 के लिए अपना उम्मीदवार घोषित कर दिया था। इस बार 50 दिन के चुनाव प्रचार में प्रधानमंत्री का कम से कम 150 चुनावी सभाएं करने का कार्यक्रम है यानी औसतन तीन रैलियां या रोड शो रोजाना। 23 अप्रैल तक प्रधानमंत्री कुल 65 हजार 302 किलोमीटर की यात्रा कर चुके हैं। यहां एक दिलचस्प आंकड़ा गौरतलब है कि प्रधानमंत्री से भी ज्यादा दूरी राहुल गांधी उतने ही दिनों में नाप चुके हैं, 84 हजार 990 किलोमीटर यानी करीब 20 हजार किलोमीटर ज्यादा। इसकी न मीडिया में चर्चा है, न खुद कांग्रेस भाजपा की तरह इवेंट बना कर पेश कर पा रही है।

हमें खुद नहीं पता कि जब उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार जैसे राज्यों में कांग्रेस कुल मिलाकर दर्जन भर सीटें लाती भी नहीं दिख रही तो राहुल गांधी आखिर कहां चुनाव प्रचार कर रहे हैं, किन इलाकों को नाप रहे हैं? क्या वे उन साइलेंट वोटर्स यानी मौन मतदाताओं को साधने में लगे हैं, जो अपने पत्ते नहीं खोल रहे? भाजपा समर्थक हमेशा से मुखर होते हैं, जहां जीतने की स्थिति में होते हैं, वहां विरोधियों की जमानत जब्त कराने की बात करते हैं और जहां हारने की स्थिति में होते हैं वहां भी जीत का माहौल बनाए रखते हैं, यह हम सब जानते हैं। दूसरी ओर, उसे वोट न देने वाले मौन साधे रहते हैं, क्योंकि उनके सामने राष्ट्रीय स्तर पर कोई विकल्प है नहीं और आक्रामक प्रतिक्रिया से डरे-सहमे भी रहते हैं और तादाद इनकी भी कम नहीं है।

ये मौन मतदाता ही इस चुनाव की असली गुत्थी हैं। जब लोगों से यह पूछा जाता है कि किसे वोट देंगे तो हर दूसरे वोटर का जवाब होता है, अभी तय नहीं किया है और जब पूछा जाता है कि हवा किसकी है तो जवाब होता है, इस बार वैसी तो कोई हवा दिख नहीं रही! यही सवाल अगर भाजपा समर्थक से पूछा जाए तो जवाब 300 तो छोड़िए 400 सीट के पार भी पहुंच जाता है और हवा तो छोड़िए लहर और सुनामी चलने लगती है! अब पता नहीं जमीनी सच्चाई क्या है, क्योंकि मीडिया और सोशल मीडिया की बहस या जनसभाओं की भीड़ वोट में बदल भी सकती है और नहीं भी। लेकिन असली फर्क शहरी लोकसभा सीटों और ग्रामीण लोकसभा सीटों की जमीनी स्थिति से पता चलता है, जिसका आकलन घर या ऑफिस में बैठ कर कर पाना संभव नहीं होता।

● *मो. ताबिश, जामिया, नई दिल्ली*

महंगा चुनाव

लोकसभा चुनाव के तीसरे चरण का मतदान पूरा होने तक चुनाव आयोग ने देश भर में 742 करोड़ की नकदी और 1180 करोड़ रुपए से अधिक के मूल्य के मादक पदार्थ जब्त किए हैं। वर्ष 2014 में हुए लोकसभा चुनाव के दौरान आयोग की तरफ से जितने मूल्य की सामग्री और नकदी जब्त की गई थी, यह आंकड़ा उससे कहीं अधिक है। इस बार चुनाव में सबसे ज्यादा पानी की तरह पैसा बहाया जा रहा है। चुनाव आयोग द्वारा बड़े पैमाने पर मादक पदार्थों और नकदी की बरामदगी का सिलसिला रुकने का नाम ही नहीं ले रहा है। इससे लगता है कि मौजूदा चुनाव अब तक के सभी चुनावों से अधिक महंगा साबित होगा।

● *संजू कुमार, उत्तरादाबास, हनुमानगढ़, राजस्थान*

फर्जी ही फर्जी

इन दिनों देश का चप्पा-चप्पा फर्जीवाड़े की गिरफ्त में है। फर्जी आयकर विभाग, फर्जी पुलिस, फर्जी टीसी, फर्जी वीडियो, फर्जी संदेश, फर्जी बैंक एसएमएस, फर्जी ऐप्स, न जाने क्या-क्या सब फर्जी! इस फर्जीवाड़े का शिकार हो रहे हैं आमजन। आमजन को इस फर्जीवाड़े से बचाने की जिम्मेदारी सरकार की है लेकिन लगता है कि सरकार डाल-डाल है तो ये फर्जीवाड़ा (ठगी) करने वाले पात-पात हैं! आखिर कोई तो इनसे पिंड छुड़ाए? क्या बेबस जनता ऐसे ही इनका शिकार होती रहेगी? बढ़ता फर्जीवाड़ा व ठगी इस बात का प्रमाण है कि ये शातिर लोग इतने दुस्साहसी हो गए हैं कि उनमें देश के कानून (व्यवस्था) और पुलिस का कोई खौफ नहीं है!

● *हेमा हरि उपाध्याय, खाचरोद, उज्जैन*

गिरती रैंकिंग

हाल ही में मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा जारी नेशनल इंस्टीट्यूशनल रैंकिंग फ्रेमवर्क (एनआईआरएफ) में पूरब का ऑक्सफोर्ड कहा जाने वाला इलाहाबाद विश्वविद्यालय देश के शीर्ष 200 विश्वविद्यालयों की सूची में भी अपना स्थान नहीं बना पाया है। यह काफी दुर्भाग्यपूर्ण और चिंताजनक है। इसके अनेक कारण हैं। सर्वप्रथम तो विश्वविद्यालय में शिक्षकों की कमी और उचित शिक्षक-छात्र अनुपात न होना विश्वविद्यालय के शैक्षिक स्तर को प्रभावित करता है। अन्य कारणों में शोध का निम्न स्तर, विश्वविद्यालय परिसर में आए दिन पैदा रही अराजकता से बिगड़ा माहौल, शिक्षक भर्ती में गड़बड़ी आदि तमाम मुद्दे हैं जिनका असर यहां के शैक्षिक परिवेश पर पड़ता है। इस तरह के विवादों और बवाल की वजह से जनता में इस विश्वविद्यालय के प्रति सम्मान घटा है जिसकी जानकारी एनआईआरएफ द्वारा जारी हर वर्ष इसकी गिरती रैंकिंग से साफ है। 2016 में इसकी रैंकिंग 68 थी, 2017 में 27 स्थान गिर कर 95 हुई और 2018 में यह देश के 100 शीर्ष विश्वविद्यालयों की सूची में अपना स्थान नहीं बना सका। 2019 में सबसे खराब स्थिति के साथ देश के शीर्ष 200 विश्वविद्यालयों की सूची से इसका बाहर होना सभी के लिए अत्यंत निराशाजनक है। इस विश्वविद्यालय की रैंकिंग सुधारने के लिए केवल विश्वविद्यालय प्रशासन का प्रतिबद्ध होना जरूरी नहीं है बल्कि प्रतिबद्धता यहां पढ़ रहे प्रत्येक छात्र में भी होनी चाहिए तभी यह अपना गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकेगा।

● *ऋषभ गुप्ता, मम्फोर्डगंज, प्रयागराज*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

नई दिल्ली